6

बाल संसद के रास्ते

प्रमोद दीक्षित 'मलय'*

विद्यालय वह स्थान होता है जहाँ किसी बच्चे के अनगढ़ व्यक्तित्व को गढ़ देश के श्रेष्ठ नागरिक के रूप में विकसित करने की दृष्टि और सोच काम करती है। बच्चों में यह चेतना कक्षाओं के अंदर केवल विषयगत समझ को विस्तार देने से ही संभव नहीं होती, बल्कि अन्य गतिविधियों, क्रियाकलापों और विद्यालयी संस्थाओं या समितियों में सक्रिय भागीदारी से भी पनपती है। प्रार्थना सभा, सांस्कृतिक आयोजन, खेलकूद प्रतियोगिताएँ, मीना मंच, विविध प्रोजेक्ट कार्य, दीवार पत्रिका निर्माण आदि इसमें मददगार होते हैं। 'बाल संसद' भी विद्यालय का एक ऐसा ही आयोजन है जिसके माध्यम से बच्चों मे लोकतांत्रिक व्यवस्था के प्रति निष्ठा, आस्था एवं श्रद्धाभाव, सामूहिकता, अभिव्यक्ति कौशल, निर्णय लेने की क्षमता, समस्याओं की पहचान और समाधान, मानवीय मूल्य और सौंदर्यबोध पैदा होता है। प्रस्तुत आलेख में बाल संसद के माध्यम से बच्चों में उपजी समझ और उनके कार्यों से विद्यालय एवं गाँव में हुए बदलावों को साझा करने का एक विनम्र प्रयास है।

वर्ष 2012, फ़रवरी का महीना रहा होगा। मेरा एक विद्यालय में पहली बार जाना हुआ। विद्यालय का मुख्य द्वार खुला था, मैं अंदर चला गया। अध्यापकों के पढ़ाने की आवाज़ें बाहर तक आ रही थीं। बीच-बीच में घम्म्....घम्म्....,चटाक्....चट्ट..... चटाक् की पीड़ादायक ध्वनियाँ दंड-भय रहित शिक्षा प्रदान करने के राज्य के दिशा-निर्देशों पर अट्टहास करती सुनाई पड़ रही थीं। चप्पल-जूते करीने से बाहर रखे हुए थे। कोई भी बच्चा परिसर में दिखायी नहीं पड़ रहा था। एक अपरिचित को परिसर में घूमते देखकर प्रधानाध्यापक मुझे अपने कमरे में ले गये। परस्पर परिचय और औपचारिकताओं के बाद हम दोनों ने *शिक्षा अधिकार* और *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005* पर चर्चा की। उनका मानना था कि ये सब किताबी बातें हैं, इनका विद्यालय की वास्तविक दुनिया से कोई लेना-देना नहीं है। यदि स्कूलों में दंड का प्रयोग न करें तो अनुशासन खत्म हो जायेगा। छात्र-शिक्षक संबंधों के मैत्रीपूर्ण होने और बच्चों को सोचने-समझने एवं स्वयं कुछ करने के पर्याप्त अवसर उपलब्ध कराने पर उनका कतई विश्वास नहीं था। मैं सोचने को विवश था कि मैं किसी विद्यालय में हूँ या किसी कैदखाने में, जहाँ दाखिल हुआ बच्चा छह घंटों के लिए कैदी है, बंधक है। जहाँ प्रेरणा, हास्य, उल्लास, उमंग, उत्साह, प्यार-दुलार, ममता, समता, कल्पना, तर्क एवं सृजन का संसार नही, बल्कि घुटन, रुदन, पीड़ा, नैराश्य, कलुषता और विषमता का राज

* *सह-समन्वयक*, ब्लॉक संसाधन केंद्र नरैनी, बांदा,79/18, शास्त्री नगर, अतर्रा 210 201

है। जहाँ बच्चे की मासूमियत, जिज्ञासा, इंद्रधनुषी कल्पनाओं और संवेदनाओं की रोज़ हत्या की जाती है। जहाँ कदम-कदम पर वर्जनाएँ हैं, कोमल चित्त पर थोपी गई परंपरागत सीखें हैं। इन छह घंटों में वह कितनी बार मरता और जीता है। मैंने बच्चों से मिलने की इच्छा व्यक्त की। वे मुझे यह जताते हुए कक्षाओं में ले गये कि इस विद्यालय के अनुशासन की चर्चा विभाग में भी है।

मैं एक कक्षा, शायद 7वीं थी, में घुसा तो सभी बच्चों ने यंत्रवत् खड़े होकर अभिवादन किया। उस समय पढ़ाये जा रहे विषय पर कुछ बातचीत की और प्रश्न पूछे। अधिकांश बच्चों ने लगभग सही जवाब दिये। मैंने कुछ कॉपियाँ लीं। देखा, बच्चे वही रटी-रटाई बातें शब्दशः बोल रहे थे जो कुछ उनमें लिखाया गया था। शिक्षक की सोच हावी थी, बच्चों का अपना कुछ भी नहीं था। प्रधानाध्यापक जी के चेहरे पर विजेता के भाव तैर रहे थे। जब मैंने प्रश्नों को थोड़ा कल्पना आधारित किया तो बच्चे गर्व से फूले जा रहे थे जैसे शिक्षा के क्षेत्र में कोई अद्भुत क्रांतिकारी नवाचार कर दिया हो। कुछ बोल नहीं पाये। लेकिन बच्चे सचमुच प्यारे थे। मैंने बच्चों से उनके बारे में बातें करने की कोशिश की। पहले तो बच्चे बोलने में झेंप रहे थे। वे एक बार मुझे तो दूसरी बार अपने प्रधानाध्यापक जी को देख रहे थे। यह बच्चों के मन-मस्तिष्क में प्रधानाध्यापक जी का खौफ़ था या ऐसी बातचीत की प्रक्रिया शायद उनके लिए पहली बार हो रही थी। मैंने प्रधानाध्यापक जी से मुझे बच्चों के साथ अकेला छोड़ देने का अनुरोध किया तो वे अनमने भाव-से बाहर चले गये। अब कक्षा में मैं और बच्चे थे। हमने मिलकर एक गीत गाया। बातें पुनः प्रारंभ हुईं। अब वातावरण सहज होने पर वे अपनी बातें थोड़ा खुलकर कहने लगे थे और फिर तो बातों का सिलसिला घर-परिवार, खेत-खलिहान, दोस्तों, खेल-खिलौने, पढाई-लिखाई, स्कूल से होते हुए नदी, तालाब, पहाड़, बादल, फूल, तितली, पक्षी और उस मरकहे साँड़ तक भी पहुँच गया, जो स्कूल आने के तालाब वाले रास्ते पर बरगद और पीपल के झुरमुट में अकसर मिलता है। बच्चों ने यह भी बताया कि पड़ोस के गाँव बल्लान में हर साल मकर संक्रान्ति पर लगने वाले चम्भू बाबा का मेला में जाना उन्हें अच्छा लगता है, क्योंकि वहाँ गोल घूमने वाला झूला होता है और जादूगर का खेल भी। विद्यालय तो मैं अनायास बिना किसी योजना के चला आया था, लेकिन अब मेरे दिमाग में योजना पकने लगी थी। मन ही मन मैंने योजना पर काम करने का निश्चय कर लिया था। तभी बातचीत के क्रम में मैंने बच्चों से बाल संसद की चर्चा कर दी। वे इसके बारे में बिल्कुल नहीं जानते थे। लेकिन उनमें उत्सुकता थी, वे बाल संसद के बारे में अधिकाधिक जानकारी जानना चाहते थे। मैंने हर संभव जानकारी देने की कोशिश की। बच्चों ने बाल संसद के गठन की इच्छा व्यक्त की, लेकिन यह भी बताया कि प्रधानाध्यापक जी ऐसे किसी काम को पसंद नहीं करते। वे तो बस पढ़ाई की ही बातें करते हैं। बाद में मैंने प्रधानाध्यापक जी से बाल संसद के बारे में विस्तार से बातें कीं। वे ऐसी किसी संस्था के बारे में नहीं जानते थे। मैंने उनके विद्यालय में बाल संसद बनाने का अनुरोध किया। वे इस प्रस्ताव से सहमत न थे, उन्हें अनुशासन खत्म हो जाने का डर था। लेकिन मेरे बार-बार आग्रह पर इस शर्त के साथ तैयार हुए कि विद्यालय की शैक्षिक व्यवस्था और अनुशासन पर कोई आँच नहीं आनी चाहिए। मैंने

वादा किया ऐसा कुछ नहीं होगा, बल्कि बाल संसद के बन जाने से विद्यालय बेहतर हो जायेगा। लेकिन मुझे एक अध्यापक का सहयोग चाहिए जो बच्चों के साथ काम करेंगे। इस पर एक विज्ञान शिक्षक इसके लिए सहर्ष तैयार हो गये। अब प्रत्येक कक्षा से 4–5 बच्चों को चयन करना था। बच्चों से बातचीत करते समय कुछ बच्चे मेरी समझ में आ गये थे। हम दोनों ने मिलकर तीनों कक्षाओं से 15 बच्चे का चयन किया जाए, जिनमें 8 लड़कियाँ थीं। यह करते-करते काफ़ी समय निकल गया था। अब मुझे जाना था इसलिए शिक्षक एवं बच्चों से कुछ आवश्यक बातें साझा कर अगले सप्ताह आने का वादा कर मैंने अपनी राह पकड़ी। बीच के इन 7–8 दिनों में वह शिक्षक साथी बाल संसद को समझने की दृष्टि से एक बार मेरे साथ बैठे और बहुत सारी बातें कीं।

अगले सप्ताह जब मैं विद्यालय पहुँचा तो बाल संसद में चयनित बच्चे एक कमरे में गोल घेरे में अपने शिक्षक के साथ बैठे अनौपचारिक बातचीत करते हुए शायद मेरा इंतज़ार कर रहे थे। इस एक सप्ताह में बच्चों में काफ़ी बदलाव देख रहा था। अब उनमें झिझक न होकर एक आत्मविश्वास झलक रहा था। आज काफ़ी काम करना था। सर्वप्रथम परिचय हुआ फिर बातें शुरू हुईं। आज बच्चे ज़्यादा खुले हुए थे। थोड़े से प्रोत्साहन से मुद्दे पर अपनी समझ अनुसार विचार रखने लगे। आम सहमति से पदों का बँटवारा भी हुआ। अध्यक्ष, प्रधानमंत्री, शिक्षा, उद्यान, जल, रखरखाव, सूचना, क्रीड़ा, सांस्कृतिक, भोजन, पुस्तकालय, कार्यालय आदि विभागों के मंत्री और उनकी टोलियाँ बनाई गईं। कोशिश की गईं कि प्रत्येक बच्चा किसी न किसी टोली का हिस्सा बने। उनके कार्यों के बारे में भी बताया गया। बैठक करने, प्रस्ताव रखने, उस पर अपनी बात कहने और लिखने के बारे में परामर्श दिया। पिछले एक सप्ताह के उनके अनुभव भी सुने गये। इस तरह उस विद्यालय में बाल संसद का काम धीरे-धीर बढ़ने लगा। अब बच्चों से मेरा भी एक अपनेपन का रिश्ता जुड़ने लगा था। इस काम में आनंद आने से मैं भी बहुत सारी बातें सीख पा रहा था। इस कारण मैं भी महीने में लगभग दो-तीन बार स्कूल हो आता। इस प्रकार काम करते हुए महीने बीत गए और परीक्षाएँ प्रारंभ होने को थीं। सत्र समाप्त होते-होते बच्चे काफ़ी कुछ सीख गये थे।

नया सत्र प्रारंभ हो चुका था। जुलाई का महीना था। एक दिन कार्यालय में मैं अपना काम निबटा रहा था कि मोबाइल बजा, कोई अज्ञात नवंबर था। बातें शुरू हुईं –

उधर से आवाज़ आई — "हल्लो.... सर, नमस्ते मैं .....बोल रही हूँ।"

'मैं आपको पहचान नहीं पा रहा।'

"अरे सर , मैं ....विद्यालय में कक्षा 8 की छात्रा हूँ। आप बाल संसद बनाने आये थे न पिछले साल। तो सर इस साल भी बनवा दीजिए न।"

"हाँ, याद आया। तुम वही कक्षा 7 की छात्रा .....हो न जो ज़िद्दपूर्वक मुझे अपने घर ले गई थी और खाने को गुड़-चना दिया था।''

''जी सर। मैं वही गुड़-चने वाली हूँ, अब 8 में आ गई हूँ" उसने यह भी बताया कि अब उसका स्कूल बदल रहा है। सर लोग भी परिवेशीय बातें करने लगे हैं और बच्चों को बोलने का अवसर देते हैं। मैंने अगले किसी दिन आने का वादा किया। वह खुश थी और मैं भी।

मैं सोच रहा था कि सही मायने में शायद बाल संसद के बहाने विद्यालय में बाल मैत्रीपूर्ण वातावरण

बन रहा था। अब विद्यालय में कैदखाने की अपनी पहचान से मुक्त होने की छटपटाहट थी और वह अपने को एक आनंदघर के रूप में रूपांतरित होने को लालायित हो रहा था।

मैंने वहाँ के शिक्षकों से बात कर इस बार बाल संसद का चुनाव करवाने का आग्रह किया जिसे उन्होंने मान लिया। चुनाव के दिन मैं भी पहुँचा। उस दिन विद्यालय में चहल-पहल थी, उत्सव जैसा माहौल था। लग रहा था कि कुछ नया हटकर होने वाला है। प्रधानाध्यापक जी ने बताया कि एक शिक्षक को प्रभारी बनाया गया है। नामांकन और नाम वापसी की प्रक्रिया दो दिन पहले पूरी हो गई है और संबंधित प्रत्याशियों ने बच्चों से संपर्क कर लिया है। मतदान की प्रक्रिया प्रारंभ होने के पहले अध्यक्ष और प्रधानमंत्री पद के दावेदारों का बच्चों के सम्मुख संबोधन होना था। दोनों पदों पर एक-एक लड़की और लड़का अर्थात् दो-दो दावेदार थे। सबने अपनी कही बातों में स्कूल को बेहतर बनाने, नियमित पढ़ने आने और मिलकर काम करने की अपील की। लेकिन एक लड़की, वही गुड़-चने वाली लड़की, ने अपनी बातों से मेरा ध्यान खींचा। उसने कहा — ''यदि आप मुझे जिताते हैं तो मैं स्कूल में हो रहे भेदभाव और पढ़ाई में होने वाली पिटाई को खत्म करूँगी। कमज़ोर बच्चों के लिए बोले जाने वाले वाक्य कि इसे कुछ नहीं आता है, यह गधा है, उचित नहीं हैं। इन पर भी अंकुश लगेगा। मैं चाहूँगी कि हम बच्चों को भी स्कूल में प्यार-सम्मान मिले। कक्षा में पीछे बैठने वाले भैया-बहनों को भी आगे बैठने का मौका देने के साथ हमें हमारे नाम से पुकारा जाये, मैं ऐसा प्रयास करूँगी।'' बहुत देर तक तालियाँ बजती रहीं। वहाँ उपस्थित हर व्यक्ति आश्चर्यचकित था कि ये वही बच्चे हैं जो पिछले साल अपनी बात नहीं कह पा रहे थे। चुनाव के बाद परिणाम घोषित हुआ। वह लड़की अध्यक्ष बन चुकी थी। अवसर मिलने पर प्रतिभा कैसे विकसित हो सकती है, इसे समझा जा सकता है।

मुझे याद आ रहा है कि रक्षाबंधन का त्योहार आने वाला था। बच्चों ने निर्णय लिया कि हम नये तरीके से यह पर्व मनाएँगे। उन्होंने बेकार पड़ी वस्तुओं जैसे शादी के पुराने कार्ड, रेशमी धागे, गत्तों के टुकड़े, स्पंज, थर्माकोल आदि से राखी बनाने का निश्चय किया। एक दिन समूह बनाकर राखी बनाने का काम शुरू हुआ। उस दिन विद्यालय में एक अलग प्रकार का माहौल था। मैं अनुभव कर रहा था कि बच्चे सही अर्थों में जीवन की पढ़ाई कर रहे थे। कुछ करके बहुत कुछ सीख रहे थे। यह सीखना उनका अपना था। वे अपनी राह स्वयं खोज रहे थे। तीन दिनों के सामूहिक कार्य का फल सुंदर और तरह-तरह की कल्पनात्मक राखियों के रूप में सामने था। पहली बार ऐसा हो रहा था कि शिक्षक बच्चों की सोच और काम की सराहना कर रहे थे। त्योहार की छुट्टी से पहले बच्चों ने शिक्षकों और एक-दूसरे को राखियाँ बाँधी और इससे भी बढ़कर बच्चों ने परिसर में लगे वृक्षों को राखियाँ बाँधकर उनकी रक्षा का संकल्प लिया।

बाल संसद की नियमित बैठकें हो रही थीं। नये-नये मुद्दे तलाशे जाते, उन पर विचार और काम होता। विद्यालय और समुदाय के बीच की बढ़ती दूरी के कम करने पर विचार-विमर्श हुआ। दीपावली का त्योहार नज़दीक था। बातों ही बातों में तय हुआ कि इस दीवाली में विद्यालय को समुदाय के सहयोग से सजाया जाये और दीपक जलाये जाएँ। योजना बनायी

गई कि बच्चे दो-दो दीपक, तेल और बाती लाएँगे। निश्चित दिन को शाम के समय बच्चे विद्यालय आना शुरू हो चुके थे। अभिभावक और माता-पिता भी दीपक लेकर आ रहे थे। कुछ पुराने छात्रों का समूह भी आ जुटा। प्रबंध समिति के सदस्य भी आये। कुल 917 दीपक एकत्र हुए। जब सभी दीपक जलाये गये तो पूरा विद्यालय रोशनी से नहा गया। ऐसा लग रहा था कि आसमान से सितारे धरती पर उतर आये हों। गाँववासियों ने वादा किया कि बच्चों ने पहल कर जो परंपरा डाली है उसे हम आगे भी जारी रखेंगे। एक बात मुझे और याद आती है। उस विद्यालय में वर्ष 2013 में नामांकन 207 था और एक नल होने के कारण मध्याह्न भोजन के समय थाली धोने एवं पानी पीने में काफ़ी अव्यवस्था रहती थी। विद्यालय द्वारा कई बार एक और नल लगाने के लिए प्रार्थना पत्र देने के बावजूद दूसरा नल नहीं लग सका। बाल संसद की बैठक में इस संबंध में एक प्रस्ताव रखा गया और सारी समस्याओं का चित्रण करते हुये एक प्रार्थना पत्र खण्ड विकास अधिकारी को भेजा गया। आश्चर्य, अगले सप्ताह ही नल लगाने की मशीन विद्यालय आ गयी। इस सफलता से बाल संसद के बच्चे अब अपनी ताकत को समझने लगे थे।

जब यह लेख लिख रहा था तो बच्चों से उनके अनुभव जानने एक बार फिर उस विद्यालय गया। मैंने अनुभव किया कि अब उस विद्यालय में जीवन साँसें ले रहा था। परिसर में बच्चों का मधुर कलरव था। विद्यालय अब चहक रहा था। बच्चों से बहुत बातें हुईं। सांस्कृतिक मंत्री सुमन ने बताया —''बाल संसद में आकर हमें अपने अधिकार और कर्त्तव्यों की समझ आयी है। अपनी ताकत का एहसास हुआ है। हमें लगता है कि अब स्कूल और गाँव के लिए हम बेहतर काम कर सकेंगे।'' यहाँ मुझे यह कहने में कोई गुरेज नहीं है कि सुमन उस जाति से है जिसने सदियों से समाज की उपेक्षा का दंश झेला है। उसके पिता बराती लाल विद्यालय प्रबंध समिति के सदस्य हैं और उसे दूसरे जातियों के अन्य अभिभावकों ने उन्हें खुशी-खुशी चुना है। कई कार्यक्रमों में वह मंच पर बैठते हैं। इसे हम बाल संसद की सामाजिक परिवर्तन की एक उपलब्धि के तौर पर देख सकते हैं। बाल संसद में काम करने से लोकतंत्र में विश्वास पैदा हुआ है। बच्चे चुनाव की प्रक्रिया समझ पाये हैं। अब लग रहा है कि इंसान के रूप में गैर बराबरी उचित नहीं है। यहाँ यह बताना प्रासंगिक होगा कि मनोज ने घर की गरीबी को देखते हुए अपनी पढ़ाई बीच में छोड़कर पिता के साथ मजदूरी करना प्रारंभ कर दिया था। बाल संसद और मीना मंच के प्रयासों से वह शिक्षा की मुख्यधारा से पुनः जुड़ पाया। अध्यक्ष अनूपा के विचार प्रेरित करते हैं। वह कहती हैं— ''पहले स्कूल में लड़कों और लड़कियों के काम का बँटवारा था। साफ़-सफ़ाई, लिपाई-पुताई, रंगोली बनाना, मिड डे मील परोसने में सहयोग करना हम लड़कियों के जिम्मे था। अब माहौल बदल गया है। काम केवल काम होता है। अब सभी काम मिलकर करते हैं।'' आगे बात जोड़ती हैं ''स्कूल के इन कामों का असर गाँव तक पहुँच गया है। घरों में महिलाओं ने अब खाने-पीने में लड़का-लड़की में भेदभाव करना छोड़ दिया है। यह समानता का व्यवहार बाल संसद के कारण हो पाया है।''

उपलब्धियों की यह यात्रा कई सुनहरे पड़ावों से गुज़रते हुए अनवरत् जारी है। अब तक 30 बच्चों ने

राष्ट्रीय योग्यता परीक्षा (आय आधारित) में सफलता अर्जित की है। एक बच्चे को 'मीना रत्न' पुरस्कार मिला है। दो बच्चों ने राज्य स्तरीय *इंस्पायर अवार्ड* प्रतियोगिता में सहभागिता की। वह प्रधानाध्यापक जी रिटायर हो चुके हैं। विदायी समारोह में अपने अंतिम भाषण में वह स्वीकारते हैं—''मैं गलत था। मैंने अपने शिक्षकीय जीवन में बच्चों को सुधारने में दंड को सर्वाधिक महत्त्व दिया। सुधार तो हम शिक्षकों को अपने कार्य-व्यवहार में करना चाहिए। आज मैं एक नया जीवन एक नई सीख लेकर जा रहा हूँ। काश, मुझे कुछ समय आप लोगों के साथ काम करने का मौका मिल पाता। लेकिन मुझे खुशी है कि यह बदलाव का दौर मेरे कार्यकाल में प्रारंभ हुआ है।''

कहने को बहुत कुछ है। बदलाव की यह प्रक्रिया अभी जारी है। अभी बहुत कुछ करना शेष है।

निष्कर्ष

यह कहा जा सकता है कि बाल संसद के माध्यम से बच्चों ने लोकतंत्र की मूल भावना को समझा है जिसमें सभी के लिए अभिव्यक्ति एवं विकास के समान अवसर हैं। जाति, जेंडर, पंथ, भाषा, क्षेत्र एवं वर्गाधारित भेदभाव के लिए समाज जीवन में कोई जगह नहीं है। प्रेम, सद्भाव, शांति, अहिंसा के साथ जीवन जीने में ही मनुष्य की सफलता है। निश्चित रूप से बाल संसद बच्चों को बेहतर नागरिक के रूप में सँवार रहा है जो देश के संवैधानिक मूल्यों की रक्षा करते हुए लोकतंत्र की नींव को मज़बूती देंगे।